Review Of Research
ISSN 2249-894X

Impact Factor : 3.1402(UIF)
Volume - 4 | Issue - 10 | July - 2015

मैथिलीशरण गुप्त की विरहिणी–उर्मिला सशक्त पात्र

प्रा. विठ्ठल केशवराव टेकाले
एस. एस. एम. कॉलेज, गंगाखेड,
जि. परभणी. (महाराष्ट्र)

साकेत का प्रथम प्रकाशन सन् 1931 में हुआ। साकेत का नवम् सर्ग सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। इस सर्ग में उर्मिला के विरह की मधुरतम और प्रभाव डालनेवाली विविध झलकियाँ समाहित है। उर्मिला का विरह–वर्णन इस कृति की आत्मा है।

राम ने वन में जाकर अपना त्यागी जीवन प्रारंभ कर दिया है। भरत ने राजमहल में कर्तव्य–पालन के लिए कुटिया बनाई और उसे ही ठीक समझा। सीताने राम के साथ वनवास की अवधि बितायी। उर्मिलाने अपने सुख से अधिक दुसरों के सुख की चिंता की। हमेशा उसका यही वृत रहा कि उसके कारण किसी को असुविधा ना हो। बिना वजह वह भी राजभवन को छोडकर अपनी सखी सुलक्षणा के साथ उद्यान में रहने लगीं। समय बिताने के लिए उसने अपने साथ चित्र निकालने का साहित्य और कुछ ग्रंथ लिये। राजभवन में उसका मन न तो किसी काम में लगता और न ही कुछ खाने–पीने में उसे विशेष रूचि थी। उसकी सखी सुलक्षणा उर्मिला के लिए अनेक सुख–सुविधाएँ जुटाती है परंतु उर्मिला को किसी से भी आनंद प्राप्त नहीं होता। इसका कारण यह है कि सभी सुविधाओं और सुखोपभोगों को अकेले ही नहीं भोगना चाहती। वह कभी लक्ष्मण को बुलाती है और कभी जाने के लिए कहती है।

उर्मिला अपने मन–मंदिर में पति की प्रतिमा को स्थापित कर विरह की आग में जलती हुई दिखाई देती है। उसे आठों पहर चौंसठ घडी प्रिय का ही ध्यान रहता है। उर्मिला विरहावस्था में जल रही है। उसका पति–मिलन बहुत दूर है। उसके बस में तो केवल रोना ही है। उर्मिला के शरीर–स्पर्श मात्र से विलाप की ध्वनि निकलती है।

हिन्दी साहित्य जगत् में यह सामान्य धारणा है कि, इसी उर्मिला के व्यक्तित्व को प्रकाश में लाने के निमित्त ही साकेत का प्रणयन हुआ है। इसकी प्रेरणा गुप्तजी को अनेक सुत्रों से मिली है।

मंथरा के कुचक्र के परिणाम स्वरूप राम को चौदह वर्षों का वनवास मिला। सीता ने पति का अनुगमन कर अपने पतिवृता धर्म का पालन किया। लक्ष्मण के प्राण श्रीराम चंद्रजी में बसते थे। वे एक क्षण के लिए भी उनसे अलग नही रह सकते थे इसलिए राम और सीता को वन जाते देख वे भी उनके साथ चल दिए। लक्ष्मणने अपने जीवन और धर्म की सार्थकता इसी में समझी कि राम के साथ ही वे स्वयं भी चौदह वर्षों तक वन में रहते हुए उनकी अनवरत सेवा करते रहे। श्रीरामजी के बार–बार समझाने पर भी लक्ष्मण अपने इस निश्चय से विमुख नहीं हुए और अपने आराध्य–युग्म के साथ उन्होंने भी वन को प्रस्थान किया। इस घटना से परिवार में सबसे अधिक विषम परिस्थिती में उर्मिला पड गई। वह बेचारी न तो पति की साधना में बाधा डाल सकती थी और न ही उनसे यह आग्रह कर सकती थी कि, मुझे भी अपने साथ ले चलो। उर्मिला का यह विषाद ही 'साकेत' का सबसे मार्मिक बिन्दु है। लक्ष्मण राम के साथ वन जाते देख उर्मिला मन को समझाती है –

कहा उर्मिलाने – ''हे मन
तू प्रिय–पथ का विघ्न न बन।
आज स्वार्थ है त्याग भरा!
हो अनुराग विराग भरा!
तू विकार से पूर्ण न हो,
शोक–भार से चूर्ण न हो।''

उर्मिला का यह विषाद जो 'साकेत' का सर्वाधिक मार्मिक प्रसंग कहा जाता है, उसके चरित्र का केंद्र–बिंदु है। इसी के आधार पर उसको सबसे अधिक गौरव प्रदान करने की चेष्टा की है।

उर्मिला उस परिवार की एक सहृदय वधु है जो अपनी प्रतिष्ठा में अद्वितीय है। रघुवंशी राजाओं के मुख से जब एक बात निकल गई तो उसका अनादर करना वे नहीं जानते थे। दशरथ कोई साधारण सम्राट नहीं थे, काम पडने पर स्वयं इन्द्र उनकी सहायता के प्रार्थी थे। इसके अतिरिक्त उर्मिला मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के अनुज और लक्ष्मण जैसे पराक्रमी एवं त्यागी योध्दा की पत्नी

थी, साथ ही जनक जैसे ज्ञानी राजा की कन्या और सीता की छोटी बहन थी। ऐसी अवस्था में यह आशा की जाती है कि उसका जीवन महान होगा।

रघुकुल के सामने एक विशेष परिस्थिती प्रस्तूत होती है उस परिस्थिती में अपराधी बन एक ओर साधु भरत हैं तो दुसरी ओर इस शोचनीय काण्ड के कारण सबसे अधिक हानि सहन करने और पीडा पाने वाली उर्मिला है।

गोस्वामी तुलसीदास के 'रामचरितमानस' में उर्मिला का जो वर्णन किया है उसमें क्षमा तत्व का समावेश किया गया है। तुलसी की उर्मिला ने मौन रहकर उस आत्म–सम्मान का परिचय दिया है, जिसका अवलम्ब प्राप्त करके ही वह दशरथ, राम, लक्ष्मण, भरत आदि की श्रेणी में सिर उँचा करके बैठ सकती थी। परिस्थिती के वैषम्य का आदर्श समाधान उर्मिला का मौन ही हो सकता है।

'साकेत' की उर्मिला के आँसू व्यक्तिगत विषाद के द्योतक हैं, जिसमें उसने अपनी दुर्बलता की अनुभूति को ही प्रधानता दी है, आदर्श प्रीति की अनुभुति को नहीं। यद्यपि उसकी कल्पना आदर्श प्रीति विषयक ही है फिर भी यह कल्पना अधूरी कही जायेगी, इसे थोडा और प्रखर होना चाहिए था। मातृ–स्नेह–सुधा की वृष्टि केवल रामचन्द्र तक ही सीमित न रहनी चाहिए थी, उसकी दो–एक बूँद अभागे भरत को भी मिलनी चाहिए थी। इसका दायित्व उर्मिला पर ही था, क्योंकि लक्ष्मण तो राम के साथ वन में विचर रहे थे परंतु उर्मिला के पाँव अपनी दुर्बलता से ही इतने डगमग थे कि आदर्श की इस उँचाई तक चढने की उनमें शक्ति ही नहीं थी।

कैकयी संबंधी घटना से अयोध्या के राज–परिवार के सम्मुख जो कठिन प्रश्न खडा हो गया, उसका सामना उतने ही त्याग से नहीं हो सकता था जितने त्याग को उर्मिला ने अपनाने का निश्चय किया। जैसी कठिण तपस्या लक्ष्मण जंगल में कर रहे थे, उससे कम तपस्या उसे अयोध्या के राजभवन में नहीं करनी थी। आँखों से आँसू बहाना तो दूर, आहें भरना तो अलग, उसे तो प्रतिपल सावधान रहना चाहिए था कि कहीं भरत की दृष्टि में वह तनिक सी विषाद की छाया से भी विचलित न हो जाये। आखिर कैकयी का भी उसे ध्यान रखना था– वह कैकयी जिसने अनुताप की अग्नि परिक्षा में अपने आप को विशुध्द कर लिया था। अपनी असहनीय क्षति का, निर्दोष होने पर भी सबसे अधिक कष्ट–भागिनी होने का, सबको अपने आँसूओं और आहों के द्वारा स्मरण कराते रहने में उर्मिला का गौरव नहीं था। उसके हृदय की विशालता इसी में थी कि, आग की ज्वाला को अपने में रखकर भी प्रकट रुप में वह मुस्कुराया करती। इससे यह स्पष्ट है कि प्रस्तुत अवसर के संतोष के योग्य उद्दिप्त कल्पना कवि गुप्तजीने उर्मिला को प्रदान नहीं की।

उर्मिला के चरित्र की उदात्तता उसके नीजि विषाद से उत्पन्न आँसूओं के बहने से कम हो गयी। कवि उर्मिला को इस कमजोरी से नहीं बचा सके हैं–

'हे मानस के मोती, ढुलक चले तुम कहाँ बिना कुछ जाने ?
प्रिय है दूर गहन में, पथ में कौन जो तुम्हें पहचाने ?'

उर्मिला का दैन्य व्यक्तिगत स्वार्थ की हानि से संबंधित है। वे केवल लक्ष्मण की सम्पत्ति हैं इसलिए केवल उन्हीं के चरणों में अर्पित हुए हैं। तर्क दिया जा सकता है कि उर्मिला राज–परिवार की कलवधू होने के साथ–साथ एक नारी भी थी और वह भी ऐसी नारी जो अभी नव–यौवना थी। जीवन–यौवन के सुखोपभोगों का अभी उसे बहुत कम अवसर मिला था। सहसा चौदह वर्ष का दुर्दम वियोग उसके सम्मुख आ उपस्थित हुआ। ऐसी स्थिती में लक्ष्मण के लिए उसके आश्रुओं का प्रवाह अवांछनीय नहीं कहा जा सकता। इस तर्क में उर्मिला की वैयक्तिकता को प्रधानता दी गई और उसके नारी रुप की स्वतंत्रता पर बल दिया गया है; परंतु जब हम परिस्थिती, पात्र, कथा और आदर्श एवं–परंपरा की बात सोचते हैं तो हमें उर्मिला बहुत निचले स्तर पर खडी दिखाई देती है। सामान्य परिवार की कुलवधू में बहुत बडा अंतर है। जिस दिन यह अंतर मिट जायेगा उस दिन दशरथ परिवार का कोई भी सदस्य, यहाँ तक कि श्रीरामचन्द्र और सीता भी हमारे लिए आदर्श नहीं रह जायेंगे।

उर्मिला की दृष्टि में शारीरिक मिलन का अधिक महत्व है, आध्यात्मिक मिलन का नहीं। इसीलिए जब लक्ष्मण वन से वापस आकर उससे मिलते हैं तो वह भाव विकल स्वरों में कहती है–

'स्वामी, स्वामी, जन्म–जन्म के स्वामी मेरे !
किन्तु कहाँ वे अहोरात्र, वे साँझ सबेरे !

खोई अपनी हाय ! कहाँ वह खिल खिल खेला ?
प्रिय, जीवन की कहाँ आज वह चढती बेला '

उर्मिला के चरित्र में व्यापकता का अभाव है। उसमें वह उदात्तता नहीं, जिसकी अपेक्षा हम उस जैसी नारी से करते हैं। उसकी विरह–वेदना आत्म–केंद्रित है। उसमें विस्तार की कमी है फिर भी उर्मिला का व्यक्तित्व समादरणीय है। गुप्तजीने उर्मिला के चरित्र को अंकित करने में अपना एक नीजि दृष्टिकोन रखा है और उसमें वे पूर्ण सफल भी हुए हैं। उर्मिला के व्यक्तित्व को इस रूप में हिन्दी जगत् के सामने लाने का श्रेय गुप्तजी को ही जाता है। उन्होंने अपने हृदय की सारी सहानुभूति उसे ही दी है। इस दृष्टि से उसका चरित्र अत्यन्त उज्ज्वल और उच्च कोटि का है। तभी गुप्तजीने वे मूक–वेदना और विरह से तडपती हुई उर्मिला से यह कहलवाया है–

कहाँ उर्मिला ने–''हे मन !
तू प्रिय–पथ का विघ्न न बन।
आज स्वार्थ है त्याग–भरा!
हो अनुराग विराग–भरा!
तू विकार से पूर्ण न हो,
शोक–भार से चूर्ण न हो।
भ्रातृ–स्नेह–सुधा बरसे,
भू पर स्वर्ग–भाव, सरसे!''

सीता वन में प्रियतम की छाया बनकर अपने समस्त धर्मों और कर्तव्यों का पालन करती है, लेकिन उर्मिला राजगृह में रहकर स्वर्ग बनाने की बात कहती है, अपने सतीत्व को चुनौति देती है। उसका साहस देखने योग्य है कि वह आजन्म इसी वृत्त का पालन करते रहना चाहती है। उसके त्याग की झलक पग–पग पर देखने को मिलती है। सीताने अपना भाग लिया किन्तु उर्मिला ने उसे भी त्याग दिया। उसके मौन ने, उसकी पीडाने उसका गौरव द्विगुणित कर दिया है। उर्मिला कितनी दुखिनी है, इसका संकेत स्वयं सीता देती है–

''आज भाग्य जो है मेरा,
वह भी हुआ न हा! तेरा!''

उर्मिला नारी है, उस पर भी एक पत्नी। एक पत्नी के लिए सबसे महान दुःख पति–वियोग होता है। उसके प्राणों को निस्पंद एवं निश्चेष्ट बना देने के लिए इतना ही बहुत है, फिर उर्मिला जो एक नववधू है, इन चौदह वर्षों के वियोग–भार को लेकर कैसे जीवित रहे? अतः कहीं–कहीं वह भी अपने स्त्रियोचित स्वभाव के अनुसार आत्मभर्त्सना करने लगती है–

''निकली अभागिनी मैं ऐसी,
त्रैलोक्य में न होगी जैसी।
दे सकी न साथ नाथ का भी,
ले सकी न हाय! हाथ का भी!''

युध्दक्षेत्र में लक्ष्मण को शक्तिबाण लगने की सूचना जब अयोध्या में पहूँची तो सभी विकल हो उठे किंतु उर्मिला ने उस समय बडे ही धैर्य और बुध्दिमानी से काम किया। पति की चिन्ताजनक स्थिती ने उसे किंकर्तव्यविमूढ नहीं बनाया। वह सेना के आगे–आगे लंकापुरी की ओर चलने को तैयार हो गयी। उस समय उसका रूप देखने योग्य था।

शत्रुघ्न ने सेना को आदेश दिया कि, सोने की इस स्वर्णपुरी लंका को लुटो। उसी समय उर्मिला उनके आदेश का खण्डन कर देती है–

गरज उठी वह – ''नहीं, नहीं, पापी का सोना,
यहाँ न लाना, भले सिन्धु में वही डुबोना।
धीरो, धन को आज ध्यान में भी मत लाओ;
जाते हो तो मान–हेतू ही तुम सब जाओ।''

उर्मिला का यह अत्यन्त तेजस्वी रूप है, जिसे गुप्तजीने अंकित किया है।

चौदह वर्ष का वनवास समाप्त कर, लंकापति रावण की कारा से सीता को आजाद कर जब राम, लक्ष्मण, सीतासहित अयोध्या आते हैं, तब उर्मिला को देखते ही रामने उसके गुणों का वर्णन करते हुए कहा–

''तुने तो सहधर्मचारिणी के भी उपर
धर्मस्थापन किया भाग्यशालिनी, इस भू पर!''

चौदह वर्षोंके बाद हुआ उर्मिला और लक्ष्मण का मिलन बडा ही भावभूर्ण है–

''लेकर मानो विश्व–विरह उस अन्तःपुर में;
समा रहे थे एक दूसरे के वे उर में!''

संदर्भ ग्रंथ –

- मैथिलीशरण गुप्त– व्यक्ति और काव्य– डॉ. कमलाकांत पाठक
- साकेत – मैथिलीशरण गुप्त
- साकेत – एक अध्ययन – दानबहादूर पाठक